विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - २, गुरुवार, तारीख ११-९-१९८०
वचनामृत - ३७७, ३७८ प्रवचन-३०

वचनामृत ३७७। मुनि की मुख्य बात कही है। बात तो यह है कि आत्मा वस्तु की ऐसी स्थिति है कि जो योग का कम्पन तेरहवें गुणस्थान तक है, वह कम्पन जीव में नहीं है। आहाहा! सयोग दशा। सयोगी केवली। उन्हें भी योग कम्पन है। परन्तु वह पर्यायदृष्टि से जानने जैसी है। वस्तुस्थिति देखने पर उसमें योग है ही नहीं। पन्द्रह योग है—चार मन, चार वचन, सात काया के। औदारिक, वैक्रियक, आहारक और कार्माण। आहाहा! ऐसी जो वस्तु, उसे प्रगट करने और विशेष अनुभव करने के लिये... **स्वभाव में से विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये...** आहाहा! स्वभाव में तो आनन्द पड़ा है। आहाहा! योग की कम्पनक्रिया भी आत्मा में है नहीं। अरे..! ऐसा लिया न मार्गणा में? संयमलब्धिस्थान भी जीव में नहीं। आहाहा! क्योंकि वह तो क्षयोपशमभाव है। संयमलब्धिस्थान क्षयोपशमभाव है। वह भी जीव में नहीं है। आहाहा! उसकी दृष्टि, ऐसे जीव की दृष्टि, उसका अनुभव, वह सम्यग्दर्शन की शुरुआत है। आहाहा! यह चीज़ मुख्य समझे नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, **स्वभाव में से...** उसमें तो कुछ है नहीं। कम्पन, राग, द्वेष आदि स्वभाव में तो है नहीं। आहाहा! कम्पन है नहीं। जो कम्पन चौदहवें में जाये, अयोगी दशा, उसका एक अंश भी चौथे गुणस्थान में प्रगट होने पर... जीव में तो वह है ही नहीं। आहाहा! जीवद्रव्य के अन्दर जो योग मन, वचन, काय के वश से होनेवाली कम्पन दशा, वह भी जीवद्रव्य में नहीं है। जीवद्रव्य में है नहीं। आहाहा! यहाँ जीव को जाना। जीव-आत्मा उसे कहते हैं, जिसमें संयमलब्धिस्थान का विकास हो, वह भी पर्याय में है, वस्तु में है नहीं। आहाहा! और उस वस्तु की दृष्टि में आनन्द है।

स्वभाव में से विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये... विशेष क्यों कहा? चौथे, पाँचवें में आनन्द तो था, परन्तु मुनिराज तो विशेष आनन्द के लिये.. आहाहा! **स्वभाव में**

से विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये... विशेष क्यों कहा ? कि आनन्द प्रगट होता है, वह भी विशेष है और चौथे, पाँचवें से भी मुनि को विशेष आनन्द होता है। इसलिए विशेष के दो प्रकार। आनन्द स्वयं विशेष है पर्याय में और विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये **मुनिराज जंगल में बसे हैं...** आहाहा ! ऐसा जो यह भगवान आत्मा अयोगी स्वरूप भगवान आत्मा, उसका स्वरूप अयोग, अकषाय और आनन्द और पूर्ण ज्ञानादि अनन्त शक्ति का सागर। उसे **विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये मुनिराज जंगल में बसे हैं।** दूसरा कोई कारण नहीं है। आहा ! जहाँ मनुष्य की कोई आहट न हो, आहट अर्थात् आना-जाना। एकान्त कोई जंगल में गुफा में, कोई खाली (स्थान) हो, वहाँ जाकर ध्यान में (रहते हैं)। जो चीज़ है, वह तो स्वयं के पास है। आहाहा !

विशेष आनन्द प्रगट करने के लिये मुनिराज जंगल में बसे हैं। आहाहा ! गृहस्थाश्रम में पंचम गुणस्थान होता है, परन्तु मुनि को जो आनन्द होता है, ऐसा आनन्द नहीं (होता)। आहाहा ! क्योंकि यहाँ पंचम में तो थोड़ी उपाधि भी है। यहाँ कुछ नहीं है। एक प्रभु आत्मा.. आत्मा.. आत्मा। **उस हेतु उनको निरन्तर परमपारिणामिकभाव में लीनता वर्तती है,...** आहाहा ! इस कारण से सन्तों को अन्तर निरन्तर, अन्तर में **निरन्तर परमपारिणामिकभाव में लीनता वर्तती है,...** आहाहा ! परमपारिणामिक स्वभाव जो ध्रुव, जो नित्य स्वभाव, जो सामान्य स्वभाव, उसमें मुनिराज की लीनता वर्तती है। आहाहा ! लीनता है, वह विशेष है, वह पर्याय है। परन्तु द्रव्य जो है, वह सामान्य है। उसमें विशेष लीनता के लिये जंगल में बसते हैं। आहाहा !

दिन-रात... दिन हो या रात हो.. आहाहा ! भगवान तो सदा निरन्तर अनादि सनातन पड़ा है। उसे कोई दिन और रात की अपेक्षा नहीं है। आहाहा ! दिन हो तो ठीक पड़े और रात के अन्धेरे में ठीक न पड़े, ऐसा है ही नहीं। आहाहा ! प्रकाश का पुंज प्रभु.. दिन-रात परमपारिणामिकभाव में लीनता वर्तती है। आहाहा ! स्वभावभाव जो त्रिकाल, लब्धिस्थान भी जिसमें गिनती में आया नहीं, कम्पन भी जिसमें गिनने में आया नहीं, ऐसा परम स्वभावभाव, उसमें लीनता वर्तती है। **दिन-रात रोमरोम में एक आत्मा ही रम रहा है।** आहाहा ! मुनिपना। भगवान ! धन्य दशा ! आहा.. ! अन्तर का पंचम पारिणामिक स्वभाव, उसका अनुभव बिना समकित न हो तो मुनिपना तो कहाँ से हो ? आहाहा ! ऐसी दशा !

शरीर है किन्तु शरीर की कोई चिन्ता नहीं है,... दिन-रात रोम-रोम में एक आत्मा ही रम रहा है। दिन-रात कहा तो पिछली रयन में सोते हैं या नहीं? लेकिन वे तो अन्तर में आनन्द में है। उस समय भी अन्तर में आनन्द में ही है। आहाहा! निद्रा के काल में भी अतीन्द्रिय आनन्दमय दशा है। आहाहा! पूर्ण प्रभु भिन्न (उसमें अन्य) कुछ है नहीं। दूर नहीं है। जहाँ जाओ वहाँ स्वयं है। आहाहा! कोई क्षेत्र, कोई काल में, कोई जंगल या कोई गाँव। आहाहा! अपना शुद्धस्वरूप, उसमें रोम-रोम में एक आत्मा ही रम रहा है। रोम-रोम में (कहा) उसका अर्थ-आत्मप्रदेश में। रोम तो बाल है। **शरीर है किन्तु शरीर की कोई चिन्ता नहीं है, देहातीत जैसी दशा है।** देह से रहित हो, ऐसी तो जिनकी दशा हो गयी। आहाहा! चलते सिद्ध ऐसा कहा है। **उत्सर्ग एवं अपवाद की मैत्रीपूर्वक रहनेवाले हैं।** अन्तर में लीन रहते हैं और लीन रहने में थोड़ा प्रमाद आ जाए तो अपवाद मार्ग में स्वाध्याय आदि का विकल्प आता है। स्वाध्याय का विकल्प वह अपवाद है। अन्तर में तो स्वाध्याय-स्व-अध्याय है। आहाहा!

अन्तर स्वरूप भगवान आत्मा स्व सन्मुख में तो स्वाध्याय है ही, परन्तु जरा अन्दर विशेष लीन न हो सके, विशेष-विशेष; विकल्प आता है तो वह अपवादमार्ग है। तो वह अपवाद ख्याल में आ जाता है कि अभी अन्तर में स्थिर नहीं रह सकता हूँ। अपवाद और उत्सर्ग। अन्तर में रहना वही उत्सर्गमार्ग है। यह तो विकल्प आता है, प्रमाद है। आहाहा! संज्वलन का उदय है। चौथी कषाय है, उसका थोड़ा उदय है। उसको अपवाद कहते हैं। **उत्सर्ग और अपवाद की मैत्रीपूर्वक रहनेवाले हैं। आत्मा का पोषण करके...** आहाहा! ऐसी बात। मुनि किसे कहें? आहाहा! जो **आत्मा का पोषण करके निज स्वभावभावों को पुष्ट करते हुए...** निज स्वभावभाव शक्तिरूप जो है, उसको व्यक्तरूप से पुष्टि करते हुए - प्रगटरूप पुष्टि करते हुए। आहाहा! शक्तिरूप तो परमात्मा ही है। शक्ति-सामर्थ्य उसका भगवान आत्मा का स्वभाव, परमात्मा का स्वभाव ही है। यहाँ तो व्यक्त प्रगट करने की दशा। आहाहा!

निज स्वभावभावों को पुष्ट करते हुए... पर्याय में। ध्रुव तो है ही। उसके अवलम्बन से.. आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द को पुष्ट करते हुए **विभावभावों का शोषण करते हैं।** विकल्प का नाश करते हैं। शोषण अर्थात् नाश। दया, दान, व्रतादि पंच महाव्रत के

विकल्प, वह तो अपवादमार्ग है, दोष है, दुःख है। आहाहा! उसका शोषण करते हैं। विकल्प उठता है, उसका तो नाश करने का प्रयत्न है। आहाहा! ऐसा मार्ग।

जिस प्रकार माता का पल्ला पकड़कर चलता हुआ बालक... साड़ी पकड़कर चलता है। उसमें कोई कुत्ता आ गया तो माँ की साड़ी बराबर पकड़े। कुत्ता आया, कोई बिल्ली आयी तो बराबर पकड़े। आहाहा! **जिस प्रकार माता का पल्ला पकड़कर चलता हुआ बालक कुछ अड़चन दिखने पर...** कुत्ता आया या कोई बिल्ली या गिलहरी आयी तो बालक डर गया। **अड़चन दिखने पर अधिक जोर से पल्ला पकड़ लेता है,...** पल्ला। आहाहा! दृष्टान्त (देते हैं)।

उसी प्रकार मुनि परीषह-उपसर्ग आने पर... क्षुधा हो और आहार मिले नहीं, तृषा हो और पानी मिले नहीं। आहाहा! और जंगल में सख्त धूप (पड़ती हो), उसमें ध्यान में बैठे हो। कहते हैं, ऐसा परीषह पड़े, **उपसर्ग आने पर...** कोई जानवर आकर थप्पड़ मारे। आहाहा! ऐसा उपसर्ग आने पर **प्रबल पुरुषार्थपूर्वक...** प्रबल पुरुषार्थपूर्वक **निजात्मद्रव्य को पकड़ लेते हैं।** आहाहा! जैसे (बालक) उसकी माँ का पल्ला विशेष पकड़ लेता है, उसकी गोद में चला जाए। ऐसे चलता हो, बाहर कोई कुत्ता आया हो तो उसकी गोद में चला जाए। आहाहा! वैसे, जब परीषह और उपसर्ग होता है, तब **प्रबल पुरुषार्थपूर्वक निजात्मद्रव्य को पकड़ लेते हैं।** आहाहा!

ऐसी पवित्र मुनिदशा... ऐसी पवित्र मुनिदशा **कब प्राप्त करेंगे! ऐसा मनोरथ सम्यग्दृष्टि को वर्तता है।** आहाहा! गृहस्थाश्रम में भी समकिती को ऐसा भाव वर्तता है। कब मैं यह छोड़ूँ और कब मैं मुनि होऊँ। कब जंगल में मेरे आत्मा में परीषह उपसर्ग आने पर भी मैं डिगू नहीं और आनन्द में जम जाऊँ! आहाहा! सब अनजानी बातें। आहा..! अकेला आत्मा.. आत्मा। व्रत, नियम और प्रत्याख्यान भी विकल्प और राग (है)। आहाहा! जोग, मन-वचन-काया के जोग का कम्पन भी नहीं। मन, वचन, काया तो नहीं, वह तो जड़ है, लेकिन उसके वश होकर कम्पन होता है, उससे रहित। आहाहा! अपने आत्मा को पकड़ लेते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! कल तो ३७६ (बोल) आया था, आज ३७७ है। **ऐसी पवित्र मुनिदशा कब प्राप्त करेंगे! ऐसा मनोरथ सम्यग्दृष्टि को वर्तता है।** आहाहा!

श्रीमद् ने अपूर्व अवसर में कहा न ? श्रीमद्।

'अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा ? बाह्यान्तर वर्तूं निर्ग्रंथ जो।' बाह्य और अभ्यन्तर निर्ग्रंथ दशा वर्तो। आहा..! अपूर्व अवसर अेवो... वह गुजराती है। क्यारे आवशे ? 'क्यारे थईशुं बाह्यांतर निर्ग्रंथ जो, सर्व भावनु छेदन करी।' सर्व भावथी उदासीन। उदासीन-पर में उदास। आहाहा! एक आत्मा में रमणता। वही एक सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र मोक्षमार्ग (है)। बाकी मोक्षमार्ग दूसरी कोई चीज़ है नहीं। आहाहा!

वह कहते हैं, **ऐसा मनोरथ सम्यग्दृष्टि को वर्तता है।** भले ही गृहस्थाश्रम में रहे। रागादि हो, परन्तु मनोरथ में तो.. आहा..! मैं कब मुनि हो जाऊँ और जंगल में आत्मदशा आनन्द की पुष्टि करूँ। ऐसी भावना सदा रहती है। वह ३७७ (पूरा हुआ)।

जिसे स्वभाव की महिमा जागी है, ऐसे सच्चे आत्मार्थी को विषय-कषायों की महिमा टूटकर उनकी तुच्छता लगती है। उसे चैतन्यस्वभाव की समझ में निमित्तभूत देव-शास्त्र-गुरु की महिमा आती है। कोई भी कार्य करते हुए उसे निरन्तर शुद्ध स्वभाव प्राप्त करने का खटका लगा ही रहता है।

गृहस्थाश्रम में स्थित ज्ञानी को शुभाशुभभाव से भिन्न ज्ञायक का अवलम्बन करनेवाली ज्ञानतृत्वधारा निरंतर वर्तती रहती है। परन्तु पुरुषार्थ की निर्बलता के कारण अस्थिरतारूप विभाव परिणति बनी हुई है, इसलिये उनको गृहस्थाश्रम सम्बन्धी शुभाशुभ परिणाम होते हैं। स्वरूप में स्थिर नहीं रहा जाता, इसलिये वे विविध शुभभावों में युक्त होते हैं: — 'मुझे देव-गुरु की सदा समीपता हो, गुरु के चरणकमल की सेवा हो' इत्यादि प्रकार से जिनेन्द्रभक्ति-स्तवन-पूजन एवं गुरुसेवा के भाव होते हैं तथा शास्त्र-स्वाध्याय के, ध्यान के, दान के, भूमिकानुसार अणुव्रत एवं तपादि के शुभभाव उनके हठ बिना आते हैं। इन सब भावों के बीच ज्ञातृत्व-परिणति की धारा तो सतत चलती ही रहती है।

निजस्वरूपधाम में रमनेवाले मुनिराज को भी पूर्ण वीतरागदशा का अभाव होने से विविध शुभभाव होते हैं: — उनके महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, पंचाचार, स्वाध्याय, ध्यान इत्यादि सम्बन्धी शुभभाव आते हैं तथा जिनेन्द्रभक्ति-श्रुतभक्ति-

गुरुभक्ति के उल्लासमय भाव भी आते हैं। 'हे जिनेन्द्र! आपके दर्शन होने से, आपके चरणकमल की प्राप्ति होने से, मुझे क्या नहीं प्राप्त हुआ ? अर्थात् आप मिलने से मुझे सब कुछ मिल गया।' ऐसे अनेक प्रकार से श्री पद्मनन्दी आदि मुनिवरों ने जिनेन्द्रभक्ति के स्त्रोत बहाये हैं।—ऐसे-ऐसे अनेक प्रकार के शुभभाव मुनिराज को भी हठ बिना आते हैं। साथ ही साथ ज्ञायक के उग्र आलम्बन से मुनियोग्य उग्र ज्ञातृत्वधारा भी सतत् चलती ही रहती है।

साधक को—मुनि को तथा सम्यग्दृष्टि श्रावक को—जो शुभभाव आते हैं, वे ज्ञातृत्वपरिणति से विरुद्धस्वभाववाले होने के कारण उनका आकुलतारूप से—दुःखरूप से वेदन होता है, हेयरूप ज्ञात होते हैं, तथापि उस भूमिका में आये बिना नहीं रहते।

साधक की दशा एकसाथ त्रिपुटी (-तीन विशेषताओंवाली) है:—एक तो, उसे ज्ञायक का आश्रय अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य के प्रति जोर निरन्तर वर्तता है, जिसमें अशुद्ध तथा शुद्ध पर्यायांश की भी उपेक्षा होती है; दूसरा, शुद्ध पर्यायांश का सुखरूप से वेदन होता है; और तीसरा, अशुद्ध पर्यायांश—जिसमें व्रत, तप, भक्ति आदि शुभभावों का समावेश है, उसका—दुःखरूप से, उपाधिरूप से वेदन होता है।

साधक को शुभभाव उपाधिरूप लगते हैं—इसका ऐसा अर्थ नहीं है कि वे भाव हठपूर्वक होते हैं। यों तो साधक के वे भाव हठरहित सहजदशा के हैं, अज्ञानी की भाँति 'ये भाव नहीं करूँगा तो परभव में दुःख सहन करना पड़ेंगे' ऐसे भय से जबरन कष्टपूर्वक नहीं किये जाते; तथापि वे सुखरूप भी ज्ञात नहीं होते। शुभभावों के साथ-साथ वर्तती, ज्ञायक का अलम्बन लेनेवाली जो यथोचित निर्मल परिणति, वही साधक को सुखरूप ज्ञात होती है।

जिस प्रकार हाथी के बाहर के दाँत—दिखाने के दाँत अलग होते हैं और भीतर के दाँत—चबाने के दाँत अलग होते हैं, उसी प्रकार साधक को बाह्य में उत्साह के कार्य—शुभ परिणाम दिखायी दें, वे अलग होते हैं और अन्तर में आत्मशान्ति का—आत्मतृप्ति का स्वाभाविक परिणमन अलग होता है। बाह्य क्रिया के आधार से साधक का अन्तर नहीं पहिचाना जाता ॥३७८॥

३७८। बड़ा (बोल है)। **जिसे स्वभाव की महिमा जागी है,...** जिसको भगवान आत्मा का स्वभाव, स्व-स्व-अपना भाव आनन्द, त्रिकाली आनन्द, त्रिकाली शान्ति, त्रिकाली प्रभुता, त्रिकाली स्वच्छता,.. आहाहा! जिसको स्वभाव की महिमा, वह स्वभाव। त्रिकाली स्वभाव सनातन अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु, उसकी—स्वभाव की महिमा जागी है, **ऐसे सच्चे आत्मार्थी को...** ऐसे सच्चे आत्मार्थी को, सच्चा आत्मार्थी। वह आत्मार्थी है। आहा..! **विषय-कषायों की महिमा टूटकर...** ऐसे गृहस्थाश्रम में भी विषय-कषायों की महिमा टूटकर **उनकी तुच्छता लगती है।** धर्मी जीव को अपने स्वभाव की महिमा के आगे, विषय-कषाय आ जाता है, परन्तु तुच्छता लगती है। आहाहा! अन्दर में आदर नहीं है। अन्दर में ज्ञानानन्द का आदर है। बाकी विषयवासना आ जाती है। चारित्रदोष (है)। भूमिका मुनि की है नहीं। मुनि की दशा में भी कभी दोष आ जाता है। पुरुषार्थ की मन्दता हो जाए तो। परन्तु उससे भी हटकर स्वभाव में रहने का प्रयत्न करते हैं।

उसे चैतन्यस्वभाव की समझ में निमित्तभूत... आहाहा! भगवान आत्मा अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का रत्न भरा है। अतीन्द्रिय आनन्द का हीरा प्रभु, शरीर प्रमाण... हीरा का जैसे पासा होता है, वैसे प्रभु में अनन्त गुण का पासा है। आत्मा में अन्दर.. आहाहा! **चैतन्यस्वभाव की समझ में निमित्तभूत देव-शास्त्र-गुरु की महिमा आती है।** विकल्प आता है। आहाहा! शुभभाव धर्मी को भी अपने स्वरूप में स्थिर रह सके नहीं - उत्सर्ग में, तो अपवाद में आ जाते हैं। देव-गुरु-धर्म की महिमा.. आहाहा! उसके निमित्तभूत (हैं तो) आती है।

कोई भी कार्य करते हुए उसे निरन्तर शुद्ध स्वभाव प्राप्त करने का... आहाहा! कहते हैं कि 'चैतन्यस्वभाव की समझ में निमिततभूत देव-गुरु-शास्त्र की महिमा आती है।' फिर भी **कोई भी कार्य करते हुए...** उस कार्य में भी **उसे निरन्तर शुद्ध स्वभाव...** भगवान अतीन्द्रिय आनन्द, निर्मलानन्द प्रभु अन्दर वीतरागमूर्ति आत्मा.. आहाहा! साक्षात् सिद्ध समान। 'सर्व जीव छे सिद्धसम, जो समझे ते थाय।' श्रीमद् में है। 'सर्व जीव छे सिद्धसम'। सर्व जीव सिद्ध समान हैं। अभव्य या भव्य। आहाहा! शरीर से तो रहित है, यह तो मिट्टी है। कर्म जो धूल है उससे रहित है। परन्तु पुण्य और पाप का भाव, देव-गुरु-शास्त्र की महिमा का भाव पुण्य उससे भी रहित है। आहाहा!

महिमा आती है। कोई भी कार्य करते हुए... उस महिमा के काल में भी, देव-गुरु-शास्त्र की महिमा के काल में भी **निरन्तर शुद्ध स्वभाव प्राप्त करने का खटका लगा रहता है।** आहाहा! भले शुभभाव आता है, परन्तु अन्दर में खटका लगा ही रहता है। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसे जो पकड़ लिया है, उस ओर का झुकाव छूटता ही नहीं। भले रागादि आता है, फिर भी अन्तर का झुकाव दूर होता नहीं। आहाहा! ऐसी बातें। कहाँ संसार में गले तक डूब गये हो। उसे ऐसी बातें (समझनी)। आहाहा!

फिर भी श्रेणिक राजा जैसे, भरत चक्रवर्ती छह खण्ड, ९६ हजार स्त्रियाँ, ९६ करोड़ सैनिक, फिर भी आत्मज्ञान था। आहाहा! वह चीज़ बाधक नहीं है, वह तो राग में राग है। अन्तर स्वरूप में रमणता वह भिन्न चीज़ है। आहाहा! ९६ हजार स्त्रियाँ, ९६ करोड़ सैनिक.. आहा..! फिर भी आत्मज्ञान पर लीनता चलती ही है। अन्तर में.. अन्तर में.. अन्तर में। आहाहा! जिसका भोजन.. आहाहा! ३६० तो अधिकारी हैं। जो ३६० अधिकारी हैं, उनमें एक अधिकारी को, बारह महीने में एक दिन आहार कैसा करना, उसकी व्यवस्था एक अधिकारी बारह महीने तक करता है। आहाहा! क्या कहा?

चक्रवर्ती समकिती है, आत्मज्ञानी है। उसके ३६० रसोईया नहीं है। रसोईया तो अलग। ३६०, रसोईया को एक दिन क्या करना, उसकी बारह महीने खोज करके, बारह महीने! आहाहा! लोगों को तो बैठना कठिन। आहाहा! बारह महीने तक एक दिन कैसा आहार करना, कैसी रोटी, कैसी दाल, कैसे चावल... आहाहा! हीरे की भस्म। करोड़ों रुपयों की हीरे की भस्म को घी में डालकर, उसमें गेहूँ डालकर, वह गेहूँ भस्मवाला घी पी जाए। उसकी बनाये रोटी। लेकिन वह सब कला, बारह महीने में एक अधिकारी सीखे, सब ख्याल में ले ले और फिर रसोईया को हुकम करे। आहाहा! आज यह बनाना। यह दाल, यह चावल, यह सब्जी, यह रोटी, यह हलवा... जो कुछ। आहाहा! ऐसे तो ३६० अधिकारी। रसोईया को कहनेवाले। फिर भी अन्तर में निरन्तर आनन्द की लहर वर्तती है। आहाहा! जिसका भोजन, एक बार का भोजन ३२ ग्रास बनाते हैं, एक ग्रास ९६ करोड़ सैनिक खा नहीं सकें। एक कवल ९६ करोड़ सैनिक पचा न सकें। ऐसे ३२ कवल को पचाते हैं। आहाहा! फिर भी अन्दर में भिन्न है। अरे..! यह नहीं, यह तो राग है। मेरी चीज़ तो वीतरागमूर्ति आनन्द है। उस आनन्द की प्रीति,प्रेम और आदर जो परिणति है,

वह परिणति हटती नहीं। आहाहा! लोगों को तो यह कठिन लगे। बाहर का थोड़ा त्याग देखे तो मानो... और इसे तो बत्तीस ग्रास का एक ग्रास ९६ करोड़ सैनिक पचा सके नहीं। ऐसे करोड़ों हीरे और माणिक की भस्म करके,... आहाहा! घी में डाले और उसमें डाले गेहूँ, वह गेहूँ सब भस्म पी जाए। उस गेहूँ की बनाये रोटी। दाल की जाति कोई अलग होगी। ऐसी अलौकिक सब बातें करे। फिर भी अन्दर में कुछ नहीं, रस बिल्कुल नहीं होता। आहाहा!

आत्मा का स्वभाव जहाँ ज्ञात हुआ है, आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन जहाँ हुआ है.. वह तो आ गया था न? कल कहा था न? वेदन है, उसका आलम्बन नहीं; आलम्बन तो भगवान त्रिकाली का आलम्बन है। आलम्बन है, उसका वेदन नहीं और वेदन है, उसका आलम्बन नहीं। आहाहा! अरे रे..! ऐसी बातें कभी जिन्दगी में सुनने (नहीं मिले), उसमें भी परदेश में गये हो, उसे तो हो चुका... आहाहा! ऐसा मार्ग प्रभु का है, भाई!

कहते हैं, उतना ३२ ग्रास का भोजन हमेशा ले तो भी उससे भिन्न रहते हैं। अन्दर अपने आनन्द को चूकते नहीं। अपने आनन्द की दशा पर जो दृष्टि हुई है और जो परिणमन हुआ है, परिणमन अर्थात् आनन्द की जो पर्याय प्रगट हुई है, उसमें ऐसी भोजन की दशा हो तो भी उसे वर्तमान आनन्द में कमी नहीं आती। आनन्द बढ़ता नहीं, परन्तु वर्तमान आनन्द में कमी नहीं आती। आहाहा! मार्ग प्रभु का अलग है, भाई! 'प्रभु नो मार्ग छे शूरानो, कायरना नहि काम'। 'जिननो मार्ग छे शूरानो, कायरना काम नहि त्यां'। सुन सके नहीं ऐसी बात। आहाहा! ऐसा भोजन और समकिती! और एक बार भी खाये नहीं और एक-एक महीने का उपवास। द्रव्यलिंगी नग्न मुनि जंगल में बैसे, परन्तु आत्मज्ञान बिना का बिना अंक के शून्य। आहाहा! वह चार गति में भटकनेवाला।

यहाँ वह कहते हैं, **कोई भी कार्य करते हुए उसे निरन्तर...** निरन्तर है न? **शुद्ध स्वभाव प्राप्त करने का खटका लगा ही रहता है।** शुद्ध स्वभाव की वृद्धि करने का खटका लगा ही रहता है। आहाहा!

गृहस्थाश्रम में स्थित ज्ञानी को... गृहस्थाश्रम में स्थित ज्ञानी को **शुभाशुभभाव से भिन्न...** उसको भी शुभभाव और अशुभभाव भी आता है। गृहस्थाश्रम में समकिती है, आत्मज्ञानी, उसको भी शुभभाव और अशुभ दोनों आते हैं। आहाहा! रौद्रध्यान आता है,

पंचम गुणस्थान में। परन्तु अन्दर में भिन्न पड़ा है, उसमें से हटता नहीं। आहाहा! वह कहते हैं कि **गृहस्थाश्रम में स्थित ज्ञानी को शुभाशुभभाव...** अशुभभाव भी आते हैं और शुभभाव भी आते हैं। आहाहा! समकिती है, धन्धा भी करता है। श्रीमद् राजचन्द्र, लाखों का जवाहरात का धन्धा करते थे। फिर भी नारियल में जैसे गोला भिन्न होता है, ... वैसे यह नारियल का गोला यह शरीर-नारियल, उसमें भगवान गोला आनन्द का नाथ अन्दर भिन्न हो गया है। आहाहा! ऐसी बात है। लाखों का व्यापार करते थे।

एक बार तो एक माणेक या रत्न का व्यापार किया था, कोई जौहरी की दुकान में। उसने पुड़िया बना दी। जिसका सौदा था वह भूल गया, वह लेनेवाला। और ऊँची चीज़ की पुडिया, जिसमें लाखों रुपये मिलें ऐसी पुड़िया दे दी। जो सौदा था, वह साधारण हीरे का था और उस हीरे की कीमत का पार नहीं, उसकी पुड़िया बना दी। वह पुड़िया लेकर घर आये। आकर जहाँ खोलकर देखा... अरे रे! अरे..! बेचारा अभी आयेगा। यह चीज़ हमारी नहीं, हमने इसका सौदा नहीं किया है। लाखों की कमाई। उस पुड़िया में लाखों की कमाई थी। आहाहा! ऐसे ऊँचे हीरे। उसे खोलते थे, उतने में वह आया। भाई! हमने यह सौदा नहीं किया है। अरे..! भाई! प्रभु! यह रही चीज़, भाई! ले जा। तेरी चीज़ ले जा। हमने जो सौदा किया, वह चीज़ लाओ। उसे ऐसा लगा, यह है कौन? यह कोई दैवीय पुरुष है! जिसे मैंने पुड़िया बना दी, तो भी अभी खोलकर मुझे देता है। मेरी भूल हुई कि मेरे हाथ में यह आ गया। आहाहा! लौकिक में नैतिक जीवन धर्मी का ऐसा होता है। आहाहा! धर्मी जीव का नैतिकपना भी अलौकिक होता है। उस समय लाखों (मिलते थे)। उस समय। अभी तो कीमत कम हो गयी। उस समय का एक लाख और अभी के पच्चीस लाख। उस समय लाखों की कीमत की पुड़िया। खोलकर देखते हैं तो, अरे..! इसका सौदा मैंने नहीं किया है। अरे..! यह क्या आ गया? उतने में वह आया, उसे दे दिया। वह लेता है और खोलता है, ये दैवीय पुरुष है कौन? आहाहा! जिसे आत्मा की पड़ी है, उसे दुनिया की कोई चीज़ की दरकार नहीं। करोड़ों रुपया हो या न हो। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **गृहस्थाश्रम में स्थित...** समकिती धर्मी-आत्मा का भानवाला। ज्ञानी को **शुभाशुभभाव से...** शुभ और अशुभ दोनों भाव होते हैं। आहाहा! है? शुभभाव भी होता है और अशुभभाव भी होता है। आहाहा! **शुभाशुभभाव से भिन्न ज्ञायक का**

अवलम्बन करनेवाली... ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा, ऐसा नित्यानन्द प्रभु, ज्ञान का हीरा पूरा भगवान आत्मा, उसकी जो अन्तर्दृष्टि, पकड़, अनुभव हुआ है, वह **ज्ञायक का अवलम्बन करनेवाली ज्ञानतृत्वधारा...** वर्तमान पर्याय। त्रिकाल ज्ञायक को पकड़नेवाली वर्तमान ज्ञातृधारा। ज्ञायक को पकड़नेवाली ज्ञायकधारा। ज्ञायक, वह द्रव्य त्रिकाली। उसको पकड़नेवाली-अनुभव करनेवाली धारा वह पर्याय है। आहाहा!

ज्ञायक का अवलम्बन करनेवाली... आहाहा! कौन? ज्ञातृधारा। **निरंतर वर्तती रहती है।** आहा..! ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा, जिसमें पुण्य-पाप तो है नहीं। शरीर, वाणी, मन तो है नहीं। दया, दान, काम, क्रोध है नहीं, परन्तु जिसमें अल्पता है नहीं। वह तो परिपूर्ण आनन्द और परिपूर्ण शक्ति से भरा पड़ा है। अशुद्धता तो है नहीं.. आहा..! परन्तु अपूर्णता है नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अनजाने आदमी को तो ऐसा लगे कि यह क्या? उस रास्ते पर चला नहीं है। आहा..! वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वर का अन्तर मार्ग, वह पंथ सुना नहीं, उसे रास्ते पर चला नहीं। आहाहा! उसे तो भटकने का रास्ता (है)।

यहाँ कहते हैं, धर्मी को गृहस्थाश्रम में शुभ और अशुभभाव होने पर भी। शुभाशुभ भाव तो विकार है, फिर भी कमजोरी से होता है, परन्तु उससे भिन्न ज्ञायक का अवलम्बन करनेवाली ज्ञातृधारा। त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप, उसका अवलम्बन करनेवाली वर्तमान ज्ञान की पर्याय। आहाहा! ज्ञातृधारा **निरंतर वर्तती रहती है।** भाषा तो सादी है, प्रभु! माल तो जो है, सो है। आहाहा! माल, अकेला मक्खन है।

परन्तु पुरुषार्थ की निर्बलता के कारण... यह क्या कहा परन्तु? कि ज्ञायकभाव जो त्रिकाल है, उसकी परिणति में ज्ञातृधारा तो बहती है। जानन, जानन-देखन, आनन्द की दशा तो वर्तती है। फिर भी, **परन्तु पुरुषार्थ की निर्बलता के कारण अस्थिरतारूप विभाव परिणति बनी हुई है,...** आहाहा! गृहस्थाश्रम में भी बड़ी-बड़ी लड़ाई करते हैं। आहाहा! अरबों का व्यापार होता है। चक्रवर्ती का राज किसे कहें! जिसके बत्तीस ग्रास में से एक ग्रास ९६ करोड़ सैनिक न खा सके, वह ३२ ग्रास हमेशा खाये, फिर भी समकिती और दूसरा सूखी रोटी खाये, दूध और घी का त्याग करके। फिर भी उसे राग

का प्रेम है और आत्मा का प्रेम नहीं। अन्तर ज्ञायक की दृष्टि होकर ज्ञायक की धारा जागृत नहीं हुई है। वह अज्ञानी है।

मुमुक्षु :- ज्ञाताधारा में पूर्णता है या अपूर्णता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- कायम-कायम चलती है। जितनी निर्मल खिली है, खिली है उतनी, खिली है उतनी। गृहस्थाश्रम में दो कषाय का अभाव। मिथ्यात्व का अभाव हुआ, उतनी खिली है। जितनी खिली है धारा वह चलती है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बातें। आहाहा!

विभाव परिणति बनी हुई है,... पुरुषार्थ की कमजोरी से धर्मी को भी शुभ-अशुभभाव आता है। आहाहा! बन्ध का कारण है, आता है। परन्तु वह अस्थिरता के कारण, निर्बलता के कारण। **इसलिए उनको गृहस्थाश्रम सम्बन्धी शुभाशुभ परिणाम होते हैं।** है ना ? शुभ-अशुभभाव। अशुभभाव भी होता है। आहाहा! पुत्री-पुत्री, स्त्री,पुत्र, कुटुम्ब। विकल्प उठता है, जानते हैं कि यह कोई मेरी चीज़ नहीं है। मैं किसी का नहीं हूँ, वह मेरे नहीं है। परन्तु अस्थिरता के कारण; स्वरूप की दृष्टि होने पर भी, उस भूमिका के प्रमाण में, उस दशा अनुसार ज्ञायक की ज्ञायकधारा निर्मल परिणति वर्तती होने पर भी ऐसे विभाव शुभाशुभभाव आता है। आहाहा! ऐसा धर्म। ऐसा कैसा ? दूसरों को ऐसा लगे, यह जैन धर्म होगा ? आहाहा! हम तो एकेन्द्रिय की दया पालो, व्रत करो, यह सुना था। वह बात तो इसमें कहीं नहीं आती। आहाहा! प्रभु! वह मार्ग कोई दूसरा है। आहाहा! बाह्य व्रत, तप और क्रियाकाण्ड.. अरे..! शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, प्रभु! वह भी धर्म नहीं। वह शुभभाव है। आहाहा!

ब्रह्म अर्थात् आत्मा ज्ञायक है, उसको पकड़ करके उसमें लीनता होती है और अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। बात-बात में फर्क है, नाथ! तू बड़ा प्रभु है, भगवान! तेरी बात तूने सुनी नहीं। आहाहा! तू कितनी कीमत का और कितनी ऋद्धि से (भरा है), कितनी कीमत और तेरे अन्दर कितनी ऋद्धि भरी है। आहाहा! सिद्धसमान ऋद्धि सब पड़ी है तेरे में। आहाहा! भगवान! तूने नजर नहीं की। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि गृहस्थाश्रम में आत्मज्ञान होने पर भी, धर्मध्यान होने पर भी

विभाव परिणति आती है, शुभाशुभ परिणति होती है, स्वरूप में स्थिर नहीं हो सकता है। आहाहा! **स्वरूप में स्थिर नहीं रहा जाता, इसलिए वे विविध शुभभावों में युक्त होते हैं...** यह बात ली। पहले तो शुभाशुभ दोनों भाव लिये थे। फिर एक शुभ की ली। **विविध शुभभावों में युक्त होते हैं...** भक्ति, वाँचन, श्रवण, शास्त्र की चर्चा-वार्ता यह सब शुभभाव है। करते हैं। ओहोहो!

मुझे देव-गुरु की सदा समीपता हो,... आहा..! ऐसी भावना भी करते हैं। है शुभभाव, विकल्प। '**मुझे देव-गुरु की सदा समीपता हो, गुरु के चरणकमल की सेवा हो**' आहाहा! ऐसा विकल्प शुभभाव ज्ञातृधारा होने पर भी, जानन शक्ति की व्यक्तता प्रगट होने पर भी यह भाव आता है। क्योंकि पूर्ण शुद्धता प्रगट नहीं हुई है। **इत्यादि प्रकार से जिनेन्द्रभक्ति...** आहाहा! जिनेन्द्र भक्ति भी आती है। जानते हैं कि यह शुभभाव है, पुण्य है; धर्म नहीं। आहाहा! **स्तवन...** शुभभाव है। भगवान का स्तवन गाते हैं। कल भाई! एक लेख आया है। कोई आर्जिका ने... एक मासिक आता है, समयसार का गीत बहुत अच्छा बनाया है। समयसार की प्रशंसा की गीत बनाकर। उसे जो बैठा हो, वह अलग बात। परन्तु समयसार की ऐसी प्रशंसा की है, ऐसी प्रशंसा की है। आहा..! गीत बनाया है। समयसार अर्थात् क्या? चीज़! आहा..! इस भरतक्षेत्र की उग्र, उत्तम से उत्तम चीज़!! जगतचक्षु! आहाहा! समयसार अर्थात् आत्मा। आहाहा!

आत्मा की परिभाषा समयसार में कुन्दकुन्दाचार्य ने की है, वह बहिन कहती हैं। आहाहा! भक्ति आती है, स्तवन आता है, पूजन आती है **एवं गुरुसेवा के भाव होते हैं...** आहाहा! शुभभाव आता है। परन्तु धर्मी जानते हैं कि शुभभाव पुण्य है। मेरे आदर करने लायक नहीं है। आहाहा! फिर भी पुरुषार्थ की कमजोरी से आये बिना रहता नहीं। आहाहा! एक म्यान में दो तलवार? दो नहीं है। चैतन्य भगवान निर्मलानन्द वीतरागमूर्ति प्रभु, उसकी धारा निर्मल भी चलती है और साथ में राग भी चलता है। शुभ और अशुभ राग। साधक है, वहाँ बाधक तो होता ही है। मिथ्यादृष्टि को आंशिक धर्म भी नहीं है। अकेले शुभ और अशुभभाव (हैं)। भगवान को आंशिक भी दु:ख नहीं है। अकेले शुद्ध स्वभाव का पूर्ण परिणमन (है)। साधक को जितना स्वभाव के आश्रय से शुद्धता (हुई, उतनी शुद्धता है)। जितना लक्ष्य पर ऊपर जाती है, उतनी अशुद्धता है। दोनों साथ में चलती है। आहाहा! दोनों साथ में चलती है।

एक श्लोक आता है न ? भाई ! जब तक कर्म की पूर्ण विरति न हो,.. श्लोक आता है। तब तक राग आये, आये, उससे विरोध नहीं है। विरोध अर्थात् वहाँ ज्ञातृपना न रह सके—राग आया, इसलिए ज्ञातृपना न रह सके, ऐसा भी नहीं। तथा राग आया, इसलिए धर्म है, ऐसा भी नहीं। आहाहा ! श्लोक है न ? भाई ! यावत कर्म विरति। कर्म अर्थात् कार्य-राग। राग की पूर्ण निवृत्ति नहीं है, तब तक धर्मी-समकिती-आत्मज्ञानी को भी राग तो आता है। अशुभराग आता है। आहाहा ! लेकिन उसकी मिठास नहीं है। आहाहा ! उसका खेद, दुःख, जहर जैसा जानते हैं। पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण.. आहाहा ! पहले शुभाशुभभाव कहा है, बाद में शुभभाव की बात की है।

गुरु की सेवा **तथा शास्त्रस्वाध्याय के,...** शास्त्रस्वाध्याय वह भी विकल्प है, शुभभाव है। धर्म नहीं। आहाहा ! शास्त्र कहना और सुनना, दोनों राग है। आहाहा ! आये बिना रहे नहीं। कमजोरी से आता है, परन्तु है नुकसानकारक। अरर..र.. ! समाधिशतक में तो वहाँ तक लिया है, मुनि कहते हैं कि हमको उपदेश का विकल्प आता है, शुभराग है, परन्तु वह पागलपन है। ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समाधिशतक। पूज्यपाद। उपदेश का शुभभाव आता है, वह पागलपन है। क्यों ?—कि हमारे राग से वह समझ नहीं जाएगा। उसकी पर्याय स्वतन्त्र है। उसकी पर्याय उसके कारण से स्वतन्त्र प्रगट होगी। आहाहा ! तो ऐसा राग आया है, वह निरर्थक है। आहाहा ! सुनने में भी राग आया, वह विकल्प राग है। गणधर भी भगवान की वाणी सुनते हैं, परन्तु है शुभराग; धर्म नहीं। आहाहा !

शास्त्र-स्वाध्याय के, ध्यान के,... अन्दर ध्यान करूँ, ऐसा विकल्प आता है। शुभ.. शुभ। **दान के,...** सच्चे मुनि, सन्त आदि को धर्मी को दानादि का भाव आता है, वह पुण्य शुभभाव है। पुण्य है। **भूमिकानुसार...** देखो ! **अणुव्रत एवं तपादि के शुभभाव उनके हठ बिना आते हैं।** भूमिका अनुसार अणुव्रत बारह व्रत होते हैं, तपादि होते हैं। वह **शुभभाव उनके हठ बिना आते हैं।** सहज आते हैं। उस काल में क्रमबद्ध में आनेवाला है तो आया है, ऐसा जानकर दूर रहते हैं। हठ बिना। आहाहा ! **इन सब भावों के बीच ज्ञातृत्व-परिणति की धारा तो सतत चलती ही रहती है।** मैं जाननेवाला हूँ, यह बात तो सदा चलती रहती है। उसमें विरह पड़ता नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)